प्रवचन-३४, गाथा-३८, शनिवार, अषाढ़ कृष्ण १४, दिनांक ०९-०८-१९८०

निमयसार, शुद्धभाव अधिकार ३८ वीं गाथा चलती है न ? पहले तो ऐसा कहा कि यह शुद्धभाव मैं कहता हूँ। तो इस शुद्धभाव का अर्थ ? शुद्धोपयोग या शुद्धपरिणति नहीं। शुद्धभाव, वह त्रिकाली ज्ञायकभाव, सर्वज्ञस्वभावी पूर्ण। यहाँ द्रव्यस्वभाव को शुद्धभाव कहने में आया है। नहीं तो पुण्य और शुभ-अशुभराग, वह अशुद्ध राग, अशुद्धोपयोग है। और शुभराग - अशुभराग से रहित, वह शुद्धयोग है। शुद्धयोग, वह शुद्धयोग पर्याय है। शुद्धयोग कहो या शुद्धोपयोग कहो, वह तो पर्याय है। उस पर्याय को मोक्ष का कारण कहना, वह भी एक व्यवहार है। मोक्ष का कारण स्वद्रव्य है। आया ?

यह हेय और उपादेयतत्त्व के स्वरूप का कथन है। जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य... आहाहा! संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह भी बहिर्तत्त्व है। पर्याय है न ? पर्याय, द्रव्य में प्रविष्ट नहीं होती, प्रवेश नहीं करती। द्रव्य-ऊपर पर्याय तैरती है। आहाहा! इस अपेक्षा से पुण्य, पाप और आस्रव, बन्ध को तो बहिर्तत्त्व कहा, परन्तु अपना त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, उसके आश्रय से जो मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह भी बहिर्तत्त्व है। आहाहा! जो मोक्ष का मार्ग है, वह भी बहिर्तत्त्व है क्योंकि संवर, निर्जरा में वह आ गया।

यहाँ पाठ में तो हेय-उपादेय कहा और टीकाकार ने जरा ऐसा शब्द लिया कि **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** परद्रव्य होने के कारण बहुत सूक्ष्म बात, भगवान! आहाहा! पाठ में तो हेय है परन्तु टीका में उपादेय नहीं - ऐसा कहा। समझ में आया ? पाठ में **जीवादिबहित्तच्चं हेयम्** है परन्तु अर्थकार-टीकाकार कहते हैं.. आहाहा! कि जो पर्याय बहिर्तत्त्व है, वह उपादेय नहीं। आहाहा! निमित्त उपादेय नहीं, दया, दान का व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उपादेय नहीं, परन्तु मोक्ष के मार्ग की पर्याय भी उपादेय नहीं। आहाहा! उन्होंने परद्रव्य कहा, वह घर का नहीं कहा, क्योंकि ५० वीं गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है कि जितनी निर्मलादि पर्याय है, वह '**परद्रव्यम् परभावाः इति**

हेया:' ऐसे तीन शब्द ५० वीं गाथा में हैं। ५० (गाथा) परद्रव्य, परभाव, हेय। आहाहा! और उसमें समयसार का आधार लिया है। सिद्धान्त की इस ओर श्लोक है उसके नीचे चौथी लाईन में परद्रव्य कहा है, वह समयसार का कलश है। उसमें भी... आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात प्रभु!

जिसे सर्वज्ञपना आत्मा का स्वभाव, वह निरन्तर वर्तमान (वर्त रहा है)। आहाहा! वह त्रिकाली वर्तमान सर्वज्ञस्वभाव, उस अपेक्षा से मोक्ष के मार्ग की जो पर्याय है, उसका आश्रय करने से तो विकल्प उत्पन्न होता है। जैसे परद्रव्य में से अपनी पर्याय नहीं आती, वैसे पर्याय में से पर्याय नहीं आती; इसलिए पर्याय को परद्रव्य कहा है। सेठ! यह तो कभी सुना नहीं ऐसी बात है। वहाँ पैसे के कारण धूल में (फुरसत नहीं) परन्तु प्रेम है, इसलिए छोड़कर यहाँ आये हैं। मार्ग बहुत (सूक्ष्म) है, प्रभु! आहाहा!

देव, गुरु, शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हम तेरे आदरणीय नहीं, हों! आहाहा! सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं कि हम तेरे आदरणीय नहीं, हों! आहाहा! यह तो मोक्षपाहुड़ की १६ वीं गाथा में कहा था न! '**परदव्वाओ दुग्गई**' सन्त, आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं, प्रभु! तेरी प्रभुता के समक्ष, तेरे स्वद्रव्य के समक्ष हम परद्रव्य हैं और हमारे प्रति लक्ष्य करेगा तो तेरी दुर्गति होगी। अर र! आहाहा! '**परदव्वाओ दुग्गई सद्दव्वदो दुग्गई**' मोक्षपाहुड़ की १६ वीं गाथा में ऐसा पाठ है। भगवान! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! अभी तो ऐसी गड़बड़ हो गयी है कि इतनी कठिनाई, फिर कितने ही भाग्यशाली लोगों के कान में पड़ता है। आहाहा! यह तो अन्दर चैतन्य सर्वज्ञ परमात्मा के घर की बात है। आहाहा! कहते हैं कि हम सर्वज्ञदेव और हमारे सन्त मोक्षमार्ग के साधक और हमारे शास्त्र, ये तीनों परद्रव्य हैं। ये परद्रव्य हैं परन्तु हमें मानना, परद्रव्य को मानना, वह राग है, वह परद्रव्य है। वह तो परद्रव्य हैं परन्तु राग से भिन्न होकर अपने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि, ज्ञान, अनुभव किया, वह अनुभव की पर्याय भी परद्रव्य है। आहाहा! ऐसे बैठो, ऐसे बैठो, इस ओर जरा। इस ओर आ जाओ, नजर पड़े वहाँ। हुकमचन्दजी, ज्ञानचन्दजी का प्रभावना में बहुत बड़ा हाथ है और यह बाबूभाई तीसरे, हमारे गुजरात में से यह बाबूभाई और हिन्दी में से ये दो। आहाहा! मार्ग प्रभु...

यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हम तो तेरे द्रव्य से परद्रव्य तो हैं ही और हमारे प्रति लक्ष्य करेगा तो हम परद्रव्य हैं तो तुझे विकल्प होगा, प्रभु! वह तो होगा परन्तु तेरे स्वद्रव्य के आश्रय से जो कुछ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न हुए, प्रभु! उन्हें भी हम

तो परद्रव्य कहते हैं। ज्ञानचन्दजी! बात ऐसी है, भगवान! भाग्य हो, उसके कान में पड़े, ऐसी बात है। लोगों को एकान्त लगती है। एकान्त है, एकान्त है.. अरे प्रभु! सम्यक् एकान्त ही है। आहाहा!

यहाँ तो कहा कि संवर-निर्जरा, जो चारित्र सम्यग्दर्शन अनुभवसहित आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पूर अर्थात् प्रवाह.. जैसे पानी का प्रवाह चलता है, वह आड़ा चलता है। यह पूर है, वह ऐसे ध्रुव चलता है, ध्रुव। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पूर, वह पूर अर्थात् प्रवाह ध्रुवरूप से है, जिसे शास्त्र में निरन्तर वर्तमान कहा है। त्रिकाल रहनेवाला, यह अपेक्षा छोड़ दी। त्रिकाल में तीन काल का भेद हो गया। शास्त्र में पाठ है, निरन्तर वर्तमान है। जैसे वर्तमान पर्याय संवर-निर्जरा है तो उसे हम परद्रव्य कहते हैं। इस प्रकार उससे भिन्न द्रव्य भी वर्तमान है। पूर्णानन्द का नाथ.. आहाहा! वीतराग मूर्ति अचल-अकम्प ऐसी चीज़, उस चीज़ की अपेक्षा से, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन अनुभव हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। ओहोहो! उस स्वाद के भाग में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन आ जाते हैं।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः जहाँ तीनों को मोक्षमार्ग, ऐसा तत्त्वार्थसूत्र में कहा। तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वामी ने सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः कहा, वह पर्याय से कहा है। समझ में आया? वह तत्त्वार्थसूत्र पूरा ज्ञानप्रधान कथन से है। आहाहा! क्यों? कि उसमें मति श्रुत(ज्ञान) की बात की है तो मति-श्रुत परोक्ष है, ऐसा कहा है। और मति है, वह इन्द्रिय मन से उत्पन्न होता है, ऐसा कहा है तो वह सब व्यवहार है। जो मतिज्ञान है, वह त्रिकाली चैतन्य भगवान के अवलम्बन से होता है, वह मतिज्ञान है। वहाँ परोक्ष कहकर पर की अपेक्षा से कहा है। यह प्रश्न बहुत वर्ष पहले मोरबी में भाई थे न? क्या नाम? दफ्तरी। मगनभाई दफ्तरी बहुत होशियार कहलाता था न, मोरबी गवर्नर आये थे, तब उसने भाषण किया था।

मुमुक्षु : गवर्नर ने उसे होशियार कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहता हूँ। गवर्नर आये थे। मुझे यही कहना है। भाषण किया, वे मगनभाई दफ्तरी थे। गवर्नर ने उनका ऐसा गुणगान किया कि यह तो चिथड़े में लिपटा हुआ रत्न तुम्हारे गाँव में है। यह उसके साथ चर्चा हुई। लगभग (संवत्) १९८२

के साल की बात थी। तो वह कहे - इस शास्त्र में मति-श्रुत को परोक्ष कहा है। कहा - भाई! वह परोक्ष है, वह पर की अपेक्षा से है; बाकी मति और श्रुतज्ञान स्व से होते हैं, वे तो प्रत्यक्ष होते हैं... लालचन्दभाई! रहस्यपूर्ण चिट्ठी में.. अनुभव तो प्रत्यक्ष है, ऐसा श्लोक आता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : उदाहरण है न, खबर है। यहाँ तो कहते हैं, सेठ! कभी सुना नहीं, भगवान!

मुमुक्षु : सुनानेवाला कोई नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना आग्रह छोड़कर यहाँ आये। यह तो बड़ा सेठ है। राजकुमार के लड़के की लड़की इसके घर में है। बापू! यह सब बाहर की चीज़ें हैं। आहाहा! बाहर के प्रपंच की चीज़ में जिसे अधिकता भासित होती है और कुछ विशिष्टता लगती है, वह चैतन्यस्वरूप भगवान का अनादर करता है। आहाहा! वह बाहर की चीज़ तो दूर रही। अब अन्तर की जो चीज़ है संवर और निर्जरा.. आहाहा! जो त्रिकाली आनन्द का नाथ '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' जो त्रिकाली आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा जो ११ वीं गाथा में कहा है... देवीलालजी कहाँ गये? वहाँ नय भी कहा है और सम्यग्दर्शन भी कहा है। तुम्हारा प्रश्न था न? ११ वीं गाथा में भूतार्थ को नय भी कहा। दूसरे पद में। व्यवहार अभूतार्थ है, पर्यायमात्र अभूतार्थ है। संवर-निर्जरा मोक्ष की पर्याय भी अभूतार्थ है। आहाहा! फिर दूसरे पद में कहा, व्यवहार अभूतार्थ है, वह गौण करके अभूतार्थ कहा है। पर्याय का अभाव करके अभूतार्थ नहीं कहा; नहीं तो वेदान्त हो जाता है। समझ में आया? पर्याय को गौण करके 'नहीं है' ऐसा कहा है। पर्याय को असत्य कहा, वह तो गौण करके असत्य कहा है। 'है'। ये कहा न? सात तत्त्व हैं। पर्याय लक्ष्य से सात तत्त्व हैं, अस्ति है, तब कहा न? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** अस्तित्व तो सिद्ध किया। समझ में आया?

वास्तव में तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने तो ऐसा कहा **जीवादिबहित्तच्चं हेयं..** पाठ में ऐसा लिया है, परन्तु अर्थकार-टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव ने उपादेय नहीं, ऐसा कहा, मीठी भाषा। आहाहा! प्रभु! पुण्य और पाप का भाव तो बन्ध, कलुषित और दुःख है, वह तो हेय है ही परन्तु अन्दर संवर, निर्जरा और मोक्षपर्याय प्रगट हुई... आहाहा! एक

समय में तीन काल, तीन लोक जाने, ऐसी पर्याय प्रगट हुई, यहाँ साधक जीव को तो प्रगट नहीं परन्तु साधक को जो यह केवलज्ञान पर्याय है, वह सद्भूतव्यवहारनय का विषय है; निश्चयनय का विषय नहीं, क्योंकि केवलज्ञान है, वह त्रिकाली द्रव्य का भेद, एक अंश है। एक अंश है, परन्तु इसमें है तो सद्भूतव्यवहारनय से कहने में आता है। आहाहा! केवलज्ञान व्यवहार है, सद्भूतव्यवहारनय से है। आहाहा! और पुण्य-पापभाव असद्भूतव्यवहारनय से है।

यहाँ तो सद्भूतव्यवहारनय और असद्भूतव्यवहारनय दोनों को परद्रव्य है, ऐसा कहकर उपादेय नहीं, ऐसा कहा। पाठ में हेय है। **जीवादिबहित्तच्चं हेयं,** परन्तु (टीकाकार ने) मीठी भाषा की है। प्रभु! सात तत्त्व उपादेय नहीं। उसके ऊपर आश्रय करने योग्य नहीं। भगवान अन्दर विराजता है न, प्रभु! पूर्णानन्द का नाथ, वही उपादेय है, ये उपादेय नहीं। आहाहा! जयचन्दजी! यह जय होने की बात है यहाँ। पराजय होने की बात संसार में है। आहाहा!

बापू! भगवान! आहाहा! एक समय का केवलज्ञान, अरे! एक समय के अनन्त चतुष्टय केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त सत्ता को अनन्त चतुष्टय कहने में आता है परन्तु साथ में अनन्त गुण की पूर्ण पर्याय है। जितने गुण हैं, उतनी पूर्ण पर्याय सब पूर्ण है और जब श्रद्धा आत्मा में ढलती है तो मात्र श्रद्धा ही झुकती है, ऐसा नहीं है, वह तो श्रद्धा से कथन किया है। बाकी जितनी पर्यायें हैं, वे सब अन्दर झुकती हैं। आहाहा!

ग्यारहवीं गाथा में तो भाषा ऐसी आयी कि **भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो** परन्तु अकेला समकित होता है, इतना नहीं। ये सब पर्यायें जितनी हैं, वे सब भूतार्थ के आश्रय से हुई; इस कारण वहाँ पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र का अंश भी साथ में आया। अरे! अनन्त गुण का एक अंश व्यक्त अनन्त एक साथ आये। समझ में आया? अनन्त गुण जितनी संख्या में हैं, उन सब गुण की शक्ति और स्वभाव का जो सामर्थ्य था, वह पर्याय में व्यक्तरूप से एक अंश बाहर आया। आहाहा! यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है, भाई! लालचन्दजी! चिट्ठी में ज्ञानादि एकदेश चौथे गुणस्थान में और केवली को ज्ञानादि सर्वदेश। श्रीमद् में इसका अर्थ ऐसा किया कि 'सर्व गुणांश वह समकित।' समकित अर्थात् क्या? आहाहा! आत्मा में जितने गुण हैं, उन सबकी संख्या में से व्यक्त

अनन्त गुण का अंश प्रगट होता है। मात्र समकित उत्पन्न हुआ – ऐसा नहीं। आहाहा! यहाँ मुझे तो दूसरा कहना है कि अनन्त गुण का अंश जो प्रगट हुआ, उसे परद्रव्य कहा है। आहाहा! समझ में आया? वह (परद्रव्य) होने से वास्तव में उपादेय नहीं है। आहाहा! अरे! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त की कोई संख्या नहीं। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ऐसे के ऐसे अनन्त-अनन्त चले जाओ तो भी गुण की संख्या में यह अन्तिम अन्त है, ऐसा नहीं है। अन्तिम अन्त तो नहीं परन्तु यह अन्तिम एक भाग, वह तो इसमें है ही नहीं। आहाहा! इतना भगवान आनन्द-आनन्दादि स्वभाव से भरा पड़ा है। मोक्षमार्ग में एक अंश व्यक्त हुआ... आहाहा! सब गुण का। सर्वगुणांश वह समकित; उसे यहाँ परद्रव्य कहा। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! कहाँ गये हमारे जतीशजी! जतीश। बाहर बैठा है। ठीक, जतीश तो यहाँ बहुत रहता था न। आहाहा!

क्या कहा? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** समूह लिया न? एक पर्याय नहीं है। सात हैं, इसलिए समूह हुआ। तथापि वह समूह **परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है।** हेतु क्या? उपादेय क्यों नहीं? कि वह परद्रव्य होने के कारण। आहाहा! गजब बात की है।

अब आत्मा और उपादेय, यह लेना है। उसमें लम्बी बात है। **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,...** अब मुनि अपनी बात करते हैं। अपनी बात करके श्रोताओं को तत्त्व कैसा है, वह बताते हैं। स्थिति ऐसी है। हम ऐसे हैं। कैसे? **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि...** तो क्या कहा? सहज वैराग्य का अर्थ क्या? कि स्त्री, कुटुम्ब छोड़ा, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा, वह वैराग्य है, यह वैराग्य की व्याख्या ही नहीं है। वैराग्य की व्याख्या तो यह है कि अस्ति अपना पूर्ण स्वभाव भगवान, उसकी श्रद्धा और ज्ञान के साथ पुण्य-पाप के विकल्प से विरक्तपना, वह वैराग्य है। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारी भक्ति का परिणाम, उससे विरक्त, वह वैराग्य है। यह निर्जरा अधिकार में आया न? ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति। ज्ञान अस्तित्व का, सारे पूर्ण की प्रतीति, वह ज्ञान और वैराग्य, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, विरक्त; रक्त अनादि से है, उससे विरक्त। वह अस्ति का ज्ञान (और) राग से विरक्त, वह वैराग्य। आहाहा! ऐसी बात है। हजारों रानियाँ छोड़ दे, करोड़ों की आमदनी छोड़ दे, इसलिए वह वैरागी है-ऐसा नहीं है। आहाहा!

वैराग्य तो उसे कहते हैं, सहज वैराग्य, सहज अपनी चीज़ जो पूर्णानन्द का नाथ है, उसकी उपादेय बुद्धि होकर जो निर्मल प्रतीति सम्यग्दर्शन, पूर्ण के अनुभव में प्रतीति हुई, उसके साथ शुभ-अशुभ राग से हटकर वैराग्य-रक्तपना था, उसे छोड़कर विरक्त होना वह अस्ति से ज्ञान, नास्ति से वैराग्य है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग का धर्म बहुत सूक्ष्म है, प्रभु! भगवान का विरह पड़ा, प्रभु वहाँ रह गये। भगवान की यह वाणी है परन्तु प्रभु वहाँ रह गये। आहाहा! मार्ग रह गया दूसरा। आहाहा! हम तो वहाँ थे न, हमें तो विरह हो गया न!

वह प्रभु की वाणी ऐसा (कहती) है... आहाहा! भगवन्त! तुझमें अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आकाश के प्रदेश से अनन्तगुणे गुण (भरे हैं)। उन सब गुण का एक अंश व्यक्त प्रगट हो, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहने में आता है। उसे यहाँ परद्रव्य कहा गया है। आहाहा! परद्रव्य क्यों कहा? कि जैसे परद्रव्य में से अपनी शुद्धि की पर्याय नहीं आती, वैसे पर्याय के आश्रय से शुद्धि की पर्याय नहीं आती। समझ में आया? भाषा तो सादी है, प्रभु! मार्ग तो जैसा है वैसा है। आहाहा! अरे रे! इस मार्ग को समझे बिना चौरासी लाख योनि, एक-एक में अनन्त अवतार (किये) आहाहा!

कैसे मुनि कोढ़वाले? वादिराजमुनि। भगवान की स्तुति करते-करते.. विषयहार स्तुति की है। विषयहार (एकी भाव) स्तुति है न? उसमें एक शब्द लिया, प्रभु! मैं भूतकाल के दुःख याद करता हूँ तो आयुध की चोट लगती हो, ऐसा लगता है, ऐसा मुनि कहते हैं। आहाहा! मैं भूतकाल के दुःख को याद करता हूँ, ये निगोद के, नरक के (दुःख)... आहाहा! जैसे आयुध-शस्त्र की चोट लगे, वैसे चोट लगती है। अरे! यह दुःख कैसे भोगा जाये? आहाहा!

जिसके अन्तर्मुहूर्त के दुःख, नारकी के करोड़ों भव और करोड़ों जीभों से न कहे जा सकें। आहाहा! तब प्रभु के गुण अनन्त मुख और एक-एक मुख में अनन्त जीभ से भी नहीं कहे जा सकते। आहाहा! इतने गुण की संख्या है। मुझे तो यहाँ दूसरा कहना है। उसका एक अंश सम्यग्दर्शन में प्रगट हुआ, तो सब गुण का अंश प्रगट हुआ। छतां.. छतां को क्या कहते हैं? ऐसा होने पर भी उसे परद्रव्य कहा। क्योंकि पर्याय उत्पन्न हुई (उसमें से)। शुद्धि की नयी पर्याय (पर्याय में से) उत्पन्न नहीं होती। संवर है, वह शुद्धि है; निर्जरा, वह शुद्धि की वृद्धि है; मोक्ष, शुद्धि की पूर्णता है तो कहते हैं कि जो शुद्धपर्याय प्रगट हुई,

उसके आश्रय से शुद्धि उत्पन्न नहीं होती। शुद्धि की वृद्धि उत्पन्न हो तो त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है। इस कारण से जैसे परद्रव्य में से अपनी पर्याय उत्पन्न नहीं होती, वैसे अपनी निर्मल पर्याय में से भी नयी शुद्ध निर्मलपर्याय नहीं आती; इस कारण उसे हम परद्रव्य कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अलौकिक बात है।

यह मुनि कहते हैं, मुझे मेरा आत्मा उपादेय है, ऐसा कहकर जगत को सुनाते हैं। समझ में आया? मेरा आत्मा ही मुझे उपादेय है। मैं कैसा हूँ? कि **सहज वैराग्यरूपी महल...** बड़ा महल, उसका शिखर, उसका शिखामणि। **शिखर के ऊपर का रत्न; चूड़ामणि; कलगी का रत्न।** वह शिखामणि। मैं ऐसा वैराग्यस्वरूपी हूँ, ऐसा कहते हैं। **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है,...** आहाहा! यह पर्याय आदि परद्रव्य है, उनसे मैं पराङ्मुख हूँ। आहाहा! इस प्रकार से अपना दृष्टान्त देकर श्रोता को सत्य बात की प्रसिद्धि करते हैं। समझ में आया? अकेली बात नहीं है कि बात में इतना जानने का है। वस्तु तत्त्व जानना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र...** मुनि है न, मुनि? तो पाँच इन्द्रिय का लक्ष्य भी छूट गया है। अनीन्द्रिय भगवान आत्मा का आश्रय हो गया है। आहाहा! समझ में आया? **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है,...** मुनि को तो एक देहमात्र रहती है। वस्त्र-पात्र तो है ही नहीं। आहाहा! श्वेताम्बर में तो बहुत लिया है। वस्त्र, पात्र दस-दस रजोणा, दस-दस गुच्छा। भिक्षा के लिये जाये और मिले तो ले लेना। एक अपने लिये रखना और नौ आचार्य को देना। और उस पात्र को इतना रंगना।

यह (संवत्) १९७३ की बात है। १९७३ के वर्ष में हमारे गुरु पात्र रंगते थे। तो दो-दो, तीन-तीन घण्टे रंगने के लिये चाहिए। वे पात्र रंगते थे, हम स्वाध्याय करते थे। (संवत्) १९७३ की बात है। संवत् १९७३। मेरा ध्यान उस ओर बहुत नहीं था। मैंने कहा, महाराज! यह पात्र दो-दो घण्टे रोज रंगना, यह क्या है? गुरु ने ऐसा कहा, भद्रिक थे (तो कहा) पात्र रहित साधु ढूँढ़ लाना। समझ में आया? पात्र होते हैं न? साधु रखते हैं, उन पात्र को रंगते हैं, उनमें भोजन लेते हैं। वे रंगते थे और मैंने कहा कि महाराज! ये क्या करते हो? तब मेरी दीक्षा को चार वर्ष हुए थे। १९७३ की बात है। यह क्या उपाधि? तब मेरे गुरु ने ऐसा कहा कि पात्ररहित साधु ढूँढ़ ला। पात्ररहित साधु होंगे? वे ढूँढ़ लिये। आहाहा! यह

१९७३ के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए ? ६२ वर्ष हुए। ६० और २। हमारे पण्डितजी का तो जन्म भी नहीं था। वे कहे पात्ररहित साधु होते होंगे ? खोज लाना। वे खोज लिये। कुन्दकुन्दाचार्य पात्ररहित मुनि हैं। पात्र रखे, वे मुनि नहीं और अकेले पात्र तथा वस्त्र छोड़ दे तो भी मुनि नहीं। अन्दर में दया, दान, महाव्रत के परिणाम को अपना मानते हैं, आदरणीय मानते हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! यहाँ तो (कहते हैं), संवर निर्जरा को ही आदरणीय मानना नहीं। प्रगट हुए हैं। मैं तो उनसे विरुद्ध स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धि से पड़ा हूँ।

परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है,... ऐसा लिखा है न ? **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है,...** मुनि को तो देहमात्र परिग्रह है। एक शरीर छोड़ने से छूटता नहीं है। आहाहा! **जो परम जिनयोगीश्वर....** परम जिनयोगीश्वर है। मैं तो परम जिनयोगीश्वर हूँ। परम जिनयोगीश्वर। इसका अर्थ कि सम्यग्दर्शन में योग अर्थात् अपनी पर्याय को आत्मा में जोड़ना, वह तो है, परन्तु जघन्यपना है। अपनी निर्मल पर्याय को द्रव्य के साथ में जोड़ना, लीन होना, वह योग है। वह योग है। यह तो कहते हैं कि हम तो परम जिनयोगीश्वर। परम जिन और योगीश्वर। हमारे आनन्द में हमने हमारी पर्याय को बहुत जोर दिया है। आहाहा! त्रिकाली में जिस संवर, निर्जरा को परद्रव्य कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....महिमा नहीं आती पर्याय की।

पूज्य गुरुदेवश्री : है तो सही। वस्तु है। ज्ञान में तो बराबर जानना चाहिए। आदरणीय वह नहीं। ज्ञान में तो है, ऐसा न जाने, तब तो वस्तुदृष्टि नहीं रहती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **जो परम जिनयोगीश्वर हैं, स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है...** आहाहा! देखो! समकिती और मुनि कैसे होते हैं ? आहाहा! **स्वद्रव्य में...** यह मुनि की बात है न ? इसलिए **जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है...** सम्यग्दृष्टि की स्वद्रव्य में बुद्धि है, परन्तु मुनि जितनी तीक्ष्ण बुद्धि नहीं है। अन्दर आनन्द के नाथ में तीक्ष्ण बुद्धि है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है, उसमें रमणता करते हैं, उस अतीन्द्रिय आनन्द में रमण करते हैं, वह चारित्र है। चारित्र वह कहीं नग्नपना, पंच महाव्रत परिणाम, वह चारित्र-फारित्र नहीं है। सेठ! ये दिगम्बर के सेठ हैं। यह दिगम्बर। आहाहा!

कहते हैं कि हमारे **स्वद्रव्य में...** देखो! परद्रव्य से पराङ्गमुख; परद्रव्य और सात

तत्त्व कहे, उनसे पराङ्गमुख। आहाहा! गजब बात है। टीका करनेवाले ने भी गजब किया है न! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि, नग्न मुनि, दिगम्बर (मुनि), उनकी टीका है। यह कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्यदेव, पद्मप्रभमलधारिदेव। आहाहा! (परमागममन्दिर में) बीच में कुन्दकुन्दाचार्य हैं, एक ओर अमृतचन्द्राचार्य, इस ओर पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। उनकी यह टीका है। आहाहा! कहते हैं कि हम मुनि परद्रव्य से पराङ्गमुख, सहज वैराग्य के रत्न चूड़ामणि, राग के विकल्पमात्र से तो मेरा वैराग्य है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी राग है तो उस राग से भी मैं तो विरक्त हूँ। आहाहा! समझ में आया? भगवन्त! तेरी बात सूक्ष्म है, परन्तु यह बात सत्य है। आहाहा! समझना कठिन पड़े, इसका अभ्यास नहीं और इस प्रकार की उपदेश पद्धति नहीं। (अभी तो) उपदेश पद्धति ही बदल गयी है। बस, व्रत करो, प्रतिमा ले लो, यह ले लो, यह ले लो। तो यह राग की क्रिया करना, वह तो मरना है। भाई ने लिया नहीं? निहालभाई, द्रव्यदृष्टिप्रकाश। पण्डितजी! निहालभाई का द्रव्यदृष्टिप्रकाश है न? उसमें लिखा है कि रागादि करना, वह तो मरना है। दया, दान, महाव्रत आदि का परिणाम मैं करता हूँ, वह तो स्वभाव का मरण है। भगवान ज्ञातादृष्टा है, वह राग को किस प्रकार करे? त्रिकाल में कोई ऐसा गुण नहीं की विकार करे, तो पर्याय में विकार होता है... आहाहा! वह मेरा कार्य नहीं। आहाहा! और मेरा कार्य (है), ऐसा माने वह मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं। आहाहा! समझ में आया?

स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—ऐसे आत्मा को... आहाहा! **ऐसे आत्मा को...** ऐसा कहा न? कौन? परद्रव्य से पराङ्गमुख, स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धि है, सहज वैराग्य के शिखामणि है, ऐसे आत्मा को... ऐसे आत्मा को...। **'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** ऐसे आत्मा को वास्तव में 'आत्मा' उपादेय है। आहाहा! प्रियंकरजी! यह शास्त्र। बापू! भगवान त्रिलोक के नाथ, उसका सम्यग्दर्शन क्या है? और उस सम्यग्दर्शन का विषय क्या है? सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन की पर्याय भी नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन की पर्याय भी उसका विषय नहीं। आहाहा! यह तो कहा न? **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है,...** वह परद्रव्य हुआ न? सम्यग्दर्शन, वह त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य है।

एक समय की पर्याय है, और एक ओर त्रिकाली ध्रुव महाप्रभु, अनन्त गुण का सागर अनन्त गुण से भरपूर भरा हुआ आनन्द का नाथ... आहाहा! वह। **स्वद्रव्य में**

जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है... अन्दर और परद्रव्य से पराङ्गमुख है। ऐसे आत्मा को। अज्ञानी को तो इसकी खबर नहीं। इसलिए ऐसा कहते हैं कि **ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** वास्तव में देखो! पहले में भी लिया था कि परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं, ऐसा कहा था। आहाहा! **वास्तव में उपादेय नहीं...** संवर-निर्जरादि। इस आत्मा को वास्तव में आत्मा उपादेय है। आहाहा! त्रिलोकनाथ की प्रवचनध्वनि, दिव्यध्वनि यह आयी है। परन्तु बापू! प्रभु! इसे समझना, अपना आग्रह छोड़कर। जो पक्ष को मानता है, उसे छोड़कर यह समझना, वह अलौकिक बात है। आहाहा! यह अनन्त-अनन्त काल में.... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' तो पंच महाव्रत, वह दु:ख है, ऐसा कहा। अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत तो दु:ख है। आहाहा! और संवर-निर्जरा सुख है। तो भी उसे परद्रव्य कहकर **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है,...** ऐसा कहते हैं। आहाहा! दु:ख से तो पराङ्गमुख हूँ। आहाहा! परन्तु अपनी पर्याय में संवर-निर्जरा की आनन्द की दशा उत्पन्न हुई है, वह भी परद्रव्य है, मेरे लक्ष्य से वह पराङ्गमुख है; और स्वद्रव्य त्रिकाली मेरा नाथ प्रभु विराजता है, वहाँ मेरी दृष्टि है। आहाहा! कहो, पटेल! ऐसा तुम्हारे वहाँ कहीं जमीन-बमीन में है ? पटेल है। राजकोट के करोड़पति हैं। किसान। किसान समझते हो ? बड़े करोड़पति गृहस्थ। पैंतीस लाख का तो एक फ्लैट है, वहाँ चरण करने ले गये थे। वह तो जमीन-बमीन बाहर की बातें छिलके हैं। पैसे की बात तो परद्रव्य रही, वह तो अपनी पर्याय है ही नहीं। आहाहा! और दया, दान, व्रत के परिणाम, वह अपनी पर्याय नहीं, परन्तु संवर-निर्जरा, मोक्ष की पर्याय वह तो अपनी है। है, उससे भी पराङ्गमुख है। गुलांट खा जाये, गुलांट खा जाये। ऐसी दृष्टि पर्याय के ऊपर है तो द्रव्य के ऊपर ले जा। आहाहा! ऐसी बात। यह लोग बाहर से प्रेम से आये हैं। अपना घर-बार छोड़कर आये हैं। सुनने के लिये आये हैं न! आहाहा! बात तो ऐसी है, प्रभु! आहाहा!

'आत्मा' ..ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को... यह तो मुनि हैं तो मुनि की बात की है परन्तु सम्यग्दृष्टि को, ऐसे आत्मा को, परद्रव्य से पराङ्गमुख और स्वद्रव्य त्रिकाल है, वह उपादेय है। ऐसे आत्मा को वह उपादेय है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वर्ग में भी ऐसा है, नरक में भी ऐसा है। सातवें नरक में समकित

है। आहाहा! सातवें नरक में जाता है, तब मिथ्यात्व है। क्या कहा? सातवें नरक में जाता है, तब मिथ्यात्व है परन्तु बीच में समकित होता है, वापिस निकलता है, तब मिथ्यात्व है। सातवें नरक में बहुत पाप करके जाने के बाद, समकित होता है, बाद में निकलते समय मिथ्यात्व हो जाता है। आहाहा! इतनी पीड़ा और इतने प्रतिकूल संयोग, तथापि अन्दर में भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को तो ऐसा पूर्णानन्द प्रभु है, वही उपादेय है। आहाहा! यहाँ तो अभी दया पालो, व्रत करो, तपस्या करो, वह उपादेय है और आदरणीय है, वह करते-करते निश्चय हो जायेगा, (ऐसा लोग मानते हैं)। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आ जायेगी।

अरे भगवान! तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं, नाथ! तेरी चीज़ की बात तो वीतराग की वाणी... एक-एक गुण एक समय में कहे तो अनन्त काल में भी नहीं कह सकते। आहाहा! क्या कहा? केवली एक गुण को एक समय में और सादि-अनन्त काल है तो भी इसके गुण अनन्त समय में नहीं कह सकते उतने गुण हैं। सादि-अनन्त काल। केवलज्ञान हुआ और फिर अनन्त काल रहेगा, तो भी एक समय में एक गुण कहे, दूसरे समय में दूसरा गुण कहे। ऐसे सादि-अनन्त कहे तो भी अनन्त गुण नहीं कह सकते। इतने गुण का भण्डार प्रभु! तू महारत्न है, चैतन्य रत्नाकर है। चैतन्य रत्न का समुद्र / सागर भरा है। पण्डितजी को कहा था न सागर! तुम्हारा सागर नहीं, यह सागर। आहाहा!

प्रभु! यहाँ ऐसा कहते हैं, **ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** अब जरा सूक्ष्म बात है। **औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से...** क्या कहते हैं कि दया-दान के जो विकल्प उठते हैं, वह उदयभाव है, उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता, अगोचर है। उनसे अगोचर, एक बात। उपशमभाव। उपशमभाव के आश्रय से जानने में नहीं आता। उपशमभाव से जानने में आता है, परन्तु उपशमभाव के आश्रय से जानने में नहीं आता। समझ में आया? यहाँ तो चारभाव से अगोचर है, ऐसा कहते हैं। उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव। क्षायिकभाव से भी अगोचर है। अगोचर का अर्थ, चार भावान्तर। भावान्तर अर्थात् अपना जो स्वरूप-भाव है, परमपारिणामिक ज्ञायकभाव है, उससे भावान्तर। उस भाव से चार अन्य भाव। आहाहा! समझ में आया?

भावान्तर का अर्थ क्या किया? कि अपना जो त्रिकाल स्वभावभाव है, उससे अन्य भाव। वह अन्य-दूसरे हैं। उन्हें यहाँ चार भावान्तर, अपने भाव से अन्य भाव कहा है। वे

चार भाव क्षायिकभाव.. क्षायिक समकित चौथे गुणस्थान में हो तो भी यहाँ तो कहते हैं कि उस क्षायिक समकित के आश्रय से अगम्य है। क्षायिक समकित, क्षायिकभाव से अगम्य है, ऐसा कहने का अर्थ यह है। क्षायिकभाव से अगम्य है, ऐसा कहने का अर्थ यह कि क्षायिकभाव के आश्रय से यह गम्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बातें! कहो, अभयकुमारजी! यह अभय की बात है। आत्मा अभय है।

कहते हैं, इन चार भावों से अगोचर है। एक ओर ऐसा कहे कि सम्यग्दृष्टि को गोचर है, गम्य है। यह आगे कहेंगे। सम्यग्दृष्टि को गम्य है कि आत्मा कैसा है। यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि की पर्याय है, वह तो क्षयोपशम, क्षायिक आदि है, उससे अगोचर है। अर्थात् उसके आश्रय से गम्य नहीं। आश्रय तो परमस्वभाव का आश्रय करने से गम्य है। अब ऐसी बातें। ऐसा उपदेश। है या नहीं यह? यहाँ की पुस्तक है?

मुमुक्षु : पर्याय का सामर्थ्य.............

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का सामर्थ्य नहीं? पर्याय का लक्ष्य करने से विकल्प उत्पन्न होता है। इस अपेक्षा से चार भाव से अगम्य है। वरना तो उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव से गम्य है। सम्यग्दर्शन से तो गम्य है, तो सम्यग्दर्शन उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक है। उससे तो गम्य है, परन्तु यहाँ कहने का आशय ऐसा है कि वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक के आश्रय से गम्य नहीं। इसलिए चार भाव से अगोचर है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? पुस्तक है या नहीं? आहाहा!

औदयिक आदि चार भावान्तरों को... नीचे लिखा है। **भावान्तर=अन्य भाव।** भावान्तर है न? अन्यभाव अर्थात् अपना पारिणामिक त्रिकाली स्वभाव ज्ञायक से चार अन्य भाव हैं। चारों भाव अन्य हैं। जैसे सात तत्त्व को परद्रव्य कहा, वैसे ये चार भाव भी निश्चय से परद्रव्य है। आहाहा! यह सात तत्त्व में आ गया। आहाहा! **भावान्तर=अन्य भाव।** अपना त्रिकाली ज्ञायकभाव, प्रभु! उससे ये चार भाव अन्य हैं। यह भावान्तर की व्याख्या हुई। **(औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक—ये चार भाव परमपारिणामिकभाव से अन्य होने के कारण,...)** परमपारिणामिक ज्ञायकभाव जो है, उससे ये चार भाव अन्य हैं। आहाहा! द्रव्यस्वभाव जो शुद्ध चिदानन्द प्रभु है, उस भाव से यह क्षायिकभाव भी अन्य है। आहाहा! ऐसी बात! वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा की यह वाणी है। लोगों को एकान्त लगता है। लोग कहें ऐ... सोनगढ़ का एकान्त है। प्रभु!

तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं, प्रभु! आहाहा! 'एकान्त है; व्यवहार से इनकार करते हैं कि व्यवहार से नहीं होता। सिद्धान्त में लेख है कि व्यवहार साधक है और निश्चय साध्य है।' (ऐसा लोग कहते हैं)। यह तो व्यवहार का ज्ञान कराया है, प्रभु! साधक तो अपने राग से भिन्न होकर अनुभव हुआ, वह साधक है। उसमें राग बाकी है, उसे उपचार से साधक कहकर कथन किया है। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में बहुत आता है। समयसार में जयसेनाचार्य की टीका है न? व्यवहार साधन-निश्चय साध्य, यह टीका में बहुत आता है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। निश्चयाभास—निश्चय और व्यवहार दो भास में। उसे व्यवहार क्यों कहा? कि ज्ञान कराने के लिये। ज्ञान कराने के लिये व्यवहार है। है तो हेय, परन्तु उसका ज्ञान करना है या नहीं? जानना तो है या नहीं? आहाहा! भले राग हो, परन्तु जानना तो चाहिए या नहीं? इस ज्ञान से भिन्न चीज़ है, ऐसा ज्ञान करना या नहीं? श्रद्धा का आश्रय भले नहीं। आहाहा!

(इन चार भावान्तरों को अगोचर है।) अर्थात् कि चार भावों से... नीचे लिखा न? **(उन्हें भावान्तर कहा है। परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारण -परमात्मा इन चार भावान्तरों को अगोचर है।)** कारण प्रभु, सम्यग्दर्शन का कारण भगवान, वह चार भाव के आश्रय से अगम्य है। चार भाव से अगम्य है, यह शब्द लेने का अर्थ यह है। चार भाव के आश्रय से अगम्य है। वह तो त्रिकाली स्वभाव का आश्रय करने से गम्य है। समझ में आया? ऐसी बात है। आहाहा!

(कारणपरमात्मा) आहाहा! यहाँ त्रिकाली आत्मा को कारणपरमात्मा कहा है। कारणपरमात्मा। क्योंकि उसके आश्रय से कार्य होता है। समझ में आया? यह भी प्रश्न हुआ था। वीरजीभाई का लड़का है न? त्रिभुवनभाई राजकोट। महाराज! यह कारणपरमात्मा... कारणपरमात्मा कहते हो तो कारण का कार्य तो आना चाहिए, ऐसा प्रश्न हुआ था। आत्मा को कारणपरमात्मा कहते हो परन्तु कार्य तो आता नहीं, तो कारणपरमात्मा किस प्रकार? परन्तु प्रभु! कारणपरमात्मा है, यह जिसकी प्रतीति में आया, उसे कारणपरमात्मा है। प्रतीति में आया नहीं, उसे कारणपरमात्मा कहाँ है? वह तो पर्याय और राग है। प्रतीति में आया कि भगवान ऐसा है, उसे कारणपरमात्मा हैं, तो कारणपरमात्मा प्रतीति में आया तो उसे सम्यग्दर्शन कार्य हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया? इन चार भाव से अगम्य है। वह कैसा है, यह विशेष कहेंगे.....　　(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)